सिराज फैसल खान की ग़ज़लें

(ग़ज़ल-1)

ये माना जंग में कुछ खसारा हो गया है
ये कम है, जीतने का सलीका हो गया है

कज़ा जैसी चली है हवा अब के चमन में
सभी पेड़ों का जड़ से सफाया हो गया है

जिसे सब लोग अपने निशाने पर लिए थे
उसी का हर कोई अब निशाना हो गया है

किसी ने तोड़ ली हैँ सफ़ें सब काफिले की
के रहबर काफिले का अकेला हो गया है.

दिये ने तीरगी में उजाले की अज़ां दी
"अंधेरा तिलमिलाकर सवेरा हो गया"

जहां पर सल्तनत थी अज़ल से रोशनी की
वहां पर तीरगी का बसेरा हो गया है

जो मिट्टी थी बदन की उसे निगला ज़मीं ने
जो मिट्टी में बसा था खला का हो गया है

क़लम मक़्ते पे पहुँची तो हमको होश आया
ग़ज़ल कहनी थी उस पे, कसीदा हो गया है

सियासत घुल गयी है सभी रिश्तों में 'फैसल'
मुहब्बत का समन्दर भी खारा हो गया है

(ग़ज़ल-2)

तअल्लुक तोड़कर उसकी गली से
कभी मैं जुड़ न पाया ज़िन्दगी से

ख़ुदा का आदमी को डर कहाँ अब
वो घबराता है केवल आदमी से

मिरी ये तिश्नगी शायद बुझेगी
किसी मेरी ही जैसी तिश्नगी से

बहुत चुभता है ये मेरी अना को
तुम्हारा बात करना हर किसी से

ख़सारे को ख़सारे से भरूंगा
निकालूँगा उजाला तीरगी से

तुम्हें ऐ दोस्तो ,मैं जानता हूँ
सुकूँ मिलता है मेरी बेकली से

हवाओं में कहाँ ये दम था 'फ़ैसल'
दिया मेरा बुझा है बुज़दिली से